नियमसार, १७६ कलश है। १७५ हो गया है। १७६ है।

जयति सहजं तत्त्वं तत्त्वेषु नित्य-मनाकुलं,
सतत-सुलभं भास्वत्सम्यग्दृशां समता-लयम्।
परम-कलया सार्धं वृद्धं प्रवृद्ध-गुणैर्निजैः,
स्फुटितसहजावस्थं लीनं महिम्नि निजेऽनिशम्।।१७६।।

[श्लोकार्थः] तत्त्वों में वह सहज तत्त्व जयवन्त है— सात तत्त्व हैं। नव तत्त्व। आस्रव में पुण्य-पाप शामिल है। उन सात तत्त्वों में भगवान जयवन्त ज्ञानवन्त जयवन्त है। दूसरे तत्त्व तो पर्याय में पलटते हैं। संवर, निर्जरा, मोक्ष—यह पर्याय है तो पलटती है। यह पलटनरहित तत्त्व **तत्त्वों में...** अर्थात् सात तत्त्वों में **वह सहज तत्त्व जयवन्त है...** आहाहा! ध्रुव ज्ञायकतत्त्व तो जयवन्त वर्तता है। किसी समय उसमें पलटना नहीं होता, हीनता नहीं, विपरीतता नहीं। वह तो पूरा-पूरा भगवान निरावरण, पूर्ण तत्त्व विराजमान है, जयवन्त है। आहा! धर्मी भावना में ऐसा कहता है। मेरा जो पूर्ण तत्त्व सात में है, वह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! ऐसा का ऐसा अनादि काल से जो आत्मतत्त्व है, ऐसा आत्मा शुद्ध आत्मा, पवित्र आनन्द का सागर अनादि से जयवन्त वर्तता है। आहाहा!

मुमुक्षु : शुद्ध परिणमन हो, तब जयवन्त वर्ते न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जयवन्त-यही कहते हैं। जिसे ध्रुवतत्त्व भासित हुआ है, वह कहता है कि यह जयवन्त है। भासित नहीं हुआ, उसे बाहर की अकेली नजरें हैं। शरीर-वाणी-मन, कुटुम्ब-कबीला। यहाँ तो अन्दर पर्याय में भासित हुआ। सहज-स्वाभाविक।

तत्त्वों में... सात तत्त्वों में स्वाभाविक **वह सहज तत्त्व जयवन्त है...** यह जानना उसने कहा है। जानने में आया, वह कहता है। आहाहा! आस्रव तथा संवर-निर्जरा धर्म की पर्याय और धर्म की पर्याय का फल मोक्ष, वह तो एक समय की पर्यायमात्र दशा है। आहाहा! इससे जयवन्त (वर्तता है)। आहाहा! वहाँ नजर कर, वहाँ दृष्टि दे - ऐसा कहते हैं। सब संयोग और अन्दर के रागादि और उसकी एक समय की पर्याय, मोक्ष की पर्याय या संवर-निर्जरा की पर्याय, उसके ऊपर नजर न दे। ज्ञान कर। ज्ञान में वह ज्ञात होता है। परन्तु सर्वोत्कृष्ट शाश्वत् तत्त्व तो भगवान ध्रुव है, जो सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! यह कभी इसने सर्वोत्कृष्टपना जाना नहीं। अनादि काल से भटकता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा अनन्त बार की है। वह सब राग की क्रिया है; वह कहीं आत्मक्रिया नहीं है। यह तो जिसे आत्मिकक्रिया उत्पन्न हुई है, वह ऐसा कहता है, समस्त तत्त्वों में यह जयवन्त है। आहाहा! समझ में आया ? इसमें धर्म क्या है ?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में सार तत्त्व में यह तत्त्व मैं हूँ। सर्वोत्कृष्ट है। सवेरे कहा था न ? अजीव का चौथा अधिकार। अजीव का चौथा हुआ। यह हम कहीं अधिक नहीं कहते, उभार कर नहीं कहते। यह देखा था। अजीव का चौथा अधिकार।

यहाँ यह आया, देखो! आत्मा-जीवद्रव्य अपने में अपने को निरन्तर अनुभवो। आहाहा! जीवद्रव्य—आत्मा कैसा है ? आहाहा! अनुभवयोग्य आत्मा है। अनुभव करो—ऐसा जो कहा, परन्तु वह अनुभवयोग्य ही है। आहाहा! त्रिकाली चीज़ आत्मा अनुभवयोग्य है। समस्त तीन लोक में ऊपरीकरणपना-सर्वोत्कृष्ट है, उपादेय है। सर्वोत्कृष्ट है, जो उपादेय है। ऐसा ही है। बढ़ाकर नहीं कहते। क्योंकि ऐसी महिमा की और ऐसा और ऐसा... सर्वोत्कृष्ट वस्तु भगवान आत्मा, वही उपादेय है। दूसरा कुछ करनेयोग्य नहीं है।

यह हम अधिक नहीं कहते। बढ़ाकर नहीं कहते, अधिक नहीं कहते। आहाहा! परन्तु अनादि से पर्याय का और राग का अभ्यास है। साधु होवे तो भी मिथ्यात्व में पर्याय का और राग का अभ्यास। आहाहा! अन्दर त्रिकाल भगवान शुद्ध चैतन्य, वह पवित्र सर्वोत्कृष्ट है। ऊपरीकरण—ऐसा शब्द है। सबसे ऊपर तैरता है, सबसे ऊपर-ऊपर रहता है।

मुमुक्षु : आप कहते हो, तल में रहता है; यह कहते हैं ऊपर रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस तल का अर्थ (यह कि) पर्याय के (अन्दर) ऐसे। परन्तु है उससे ऊपर-सर्वोत्कृष्ट। तल का अर्थ (यह कि) एक समय की पर्याय में उस भाग में है। पर्याय के इस भाग में नहीं। बाह्य भाग में पर्याय होती है। (इस भाग में) दया, दान, व्रत में आत्मा नहीं। वह आत्मा गप्य नहीं है। एक समय की पर्याय अन्तर में ढलती है; इसलिए उसे (आत्मा को) तल में कहते हैं, परन्तु है वह चीज़ सर्वोत्कृष्ट। आहाहा!

लोगों को आत्मा की बात कठिन पड़ती है। उस क्रियाकाण्ड में पूरी जिन्दगी गयी। उसमें अनन्त काल गया। यहाँ तो कहते हैं कि पाँच परमेष्ठी का स्मरण, वह भी राग और संसार है। परसन्मुख के झुकाव का भाव, वह सब संसार है। उसे अन्तर्मुख झुकाना, वह मोक्ष का मार्ग है। उसे अन्तर्मुख में झुकाना, वह सर्वोत्कृष्ट है। वह यहाँ कहा है। समझे? हम बढ़ाकर नहीं कहते। यह अजीव अधिकार में है।

इसी तरह यहाँ कहते हैं, **तत्त्वों में वह सहज तत्त्व...** तत्त्वों में वह सहज तत्त्व **जयवन्त है—कि जो सदा अनाकुल है,...** भगवान आत्मा तो आनन्दस्वरूप है। जिसमें दुःख की गन्ध नहीं, जिसमें दुःख की छाया नहीं। आहाहा! अनाकुल आनन्दस्वरूप है। परन्तु उसमें दृष्टि दे, तब इसे पता पड़े न! है चाहे जैसा, परन्तु अन्दर नजर किये बिना (कैसे पता पड़े)? आहाहा!

जो सदा अनाकुल है, जो निरन्तर सुलभ है,... भाषा तो देखो! आहाहा! पाठ है न? '**सततसुलभं**' '**सततसुलभं**' वस्तु है, सहज है, अकृत्रिम है, अविनाशी है और अनन्त-अनन्त ध्रुवस्वभाव से भरपूर तत्त्व है, वह निरन्तर सुलभ है। आहाहा! उसकी नजर कर तो तुझे वह सुलभ है। आहाहा!

मुमुक्षु : बोधिदुर्लभ भावना किसलिए कही?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दुर्लभ कही, वह दुर्लभ अनन्त काल के अनभ्यास के कारण है। अनन्त काल के अनभ्यास के कारण। अभ्यास से सतत सुलभ है। आहाहा! अन्दर भगवान प्रभु! तू आनन्दमूर्ति है न, नाथ! आहाहा! स्त्री का, पुरुष का, तिर्यंच का देह न देख। उसके अन्दर राग है, उसे न देख क्योंकि वे कोई आत्मतत्त्व नहीं हैं। आत्मतत्त्व तो शुद्ध ध्रुव आनन्द का नाथ अनाकुलस्वरूप है। आहाहा!

निरन्तर सुलभ है,... भाषा तो देखो! दिगम्बर सन्तों की उग्र भाषा। निरन्तर पर्याय के नजदीक में स्थित है। एक समय की जो अवस्था, उसमें नजदीक में भगवान ध्रुव अनाकुल आनन्दकन्द स्थित है। 'तेरी नजर के आलस्य से तूने निरखे न नयने हरि।' हरि अर्थात् अज्ञान और राग-द्वेष को हरे, वह हरि। वह हरि यह आत्मा है। आहाहा! 'तेरी नजर के आलस्य से निरखे न नयने हरि।' पश्चात् **सततं** निरन्तर-अन्तर पड़े बिना, विघ्न पड़े बिना। आहाहा! कर्म का विघ्न और कर्म से होनेवाले राग का विघ्न, वह वस्तु में नहीं है। आहाहा! ऐसी वस्तु वह सततं सुलभ है। अनभ्यास से दुर्लभ है। सहजतत्त्व के अभ्यास से वह सहज और सुलभ है। आहाहा!

जो प्रकाशमान है,... चैतन्य के प्रकाश का नूर है। वह प्रकाश चैतन्य के प्रकाश का पूर है। आहाहा! ऐसी महत् चीज़ की महिमा लाकर अन्दर नहीं उतरता परन्तु बाहर की चीज़ की महिमा लाकर यह किया, इसने यह किया, इसने यह किया। आहाहा! पाँच, साढ़े पाँच लाख रुपये देकर नैरोबी में लक्ष्मीचन्दभाई ने मूर्ति स्थापित की। साढ़े पाँच लाख। एक ही मुख्य मूर्ति है। अब उसमें... छाती में ठीक नहीं, शरीर में ठीक नहीं। डॉक्टर के पास बताया। वह तो धूल है। धूल को कैसे रहना, वह तो उसकी अवस्था के कारण से (रहती) है। आहाहा! उस डॉक्टर की दवा से भी फेरफार होगा? शरीर और परमाणु की अवस्था का जो क्रम है, उसमें डॉक्टर की दवा से फेरफार होगा, ऐसा नहीं है। आहाहा!

क्या कहा? इस देह में जो भगवान आत्मा विराजता है, वह रागरहित है, पुण्य के परिणामरहित है। निश्चय से तो संवर, निर्जरा की पर्यायरहित है। आहाहा! धर्मरहित धर्मी। आहाहा! धर्म अर्थात् संवर और निर्जरा। एक समय की पर्याय है, उस रहित धर्मी है। अरे.. अरे..! वहाँ यह प्रश्न किया था। चन्दुभाई ने प्रश्न किया था। धर्मी कितने प्रकार के? कहा, धर्मी दो प्रकार के। एक वर्तमान धर्म त्रिकाल के आश्रय से करता है, इसलिए उसे धर्मी

कहते हैं। त्रिकाल के आश्रय से वर्तमान में शान्ति और आनन्द की दशा वेदता है, करता है, इसलिए उसे धर्मी कहते हैं और एक त्रिकाली वस्तु को धर्मी कहते हैं। आहाहा! त्रिकाली वस्तु जो धर्मी अर्थात् द्रव्य। अनन्त-अनन्त धर्म और गुण का धारक ऐसा जो भगवान आत्मा महाप्रकाशवन्त है। आहाहा!

जो सम्यग्दृष्टियों को समता का घर है,... आहाहा! धर्मी जीव को-जिसे सच्ची दृष्टि सत् हुई है, उसे वह समता का घर है। वह वीतरागमूर्ति है, ऐसा कहते हैं। **सम्यग्दृष्टियों को....** आहाहा! सम्यग्दृष्टियों अर्थात् बहुवचन है। बहुत सम्यग्दृष्टियों को, आहाहा! अर्थात् सभी सम्यग्दृष्टियों को समता का वीतराग का घर है। वहाँ से वीतरागता प्रगट होती है। जिसे आत्मा वीतरागस्वरूप है, इसकी जहाँ खबर नहीं, उसे समता, स्वाभाविक समता आवे कहाँ से? सामायिक अर्थात् समता का लाभ। सामायिक है न? सामायिक। ...है न? यहाँ तो **सम्यग्दृष्टियों को समता का घर है,...** धर्मी जीव को वीतरागदशा प्रगट हुई है। उस वीतरागता का वह घर है। पर्याय भी नहीं। समझ में आया? धर्मी जीव को जो सम्यग्दर्शन, वीतरागी पर्याय जो आत्मा के आश्रय से प्रगट हुई है, उस जीव को जो यह चीज़ है, वह त्रिकाली समता का घर है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय या द्रव्य दोनों?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों-दोनों। अभी दो नहीं है। यहाँ तो एक ही है। यहाँ तो... मेरी पर्याय ऐसा कहती है कि यह पूरा सम्यग्दर्शन समता का घर है। मेरी पर्याय में यह समता का घर है। वहाँ से वीतरागता आयी है। वह वीतराग का घर है। आत्मा वीतराग का स्थान है। आहाहा! जो वीतराग हुए और अरिहन्त भगवान को वीतरागपर्याय प्रगट हुई, वह कहाँ से, कहीं बाहर से आयी है? वीतरागमूर्ति आत्मा है। समता का घर अर्थात् यह। वीतरागपने का वह घर है। आहाहा! जिसके घर में राग और पुण्य नहीं। आहाहा! समता पड़ी है। वीतरागस्वभाव पड़ा है। उसमें से जिसने सम्यग्दर्शन किया, उसे वह समता का घर है। जिसकी दृष्टि में ही अभी राग तैरता है—दया, दान, व्रत, भक्ति का राग, उसने तो वह समता का घर, वीतरागता का घर देखा नहीं। आहाहा!

उन **सम्यग्दृष्टियों को समता...** अर्थात् वीतरागता का घर है। आहाहा! आत्मा में तो अकेली वीतरागता भरी है। जिसने उसकी नजर की है, दृष्टि की है, उसे तो वह वीतरागता

का ही घर है। वीतरागता प्रगट होती है, वह उसका घर है। पर्याय में से कहीं वीतरागता प्रगट नहीं होती। पर्याय में वीतरागता प्रगट होती है, परन्तु वीतरागता उसमें से प्रगट नहीं होती। प्रगट होती है, वह तो वीतराग का घर है। आहाहा! ऐसी बात। **सम्यग्दृष्टियों को समता का घर है,...**

जो परम कला सहित विकसित निज गुणों से प्रफुल्लित (खिला हुआ) है,... आहाहा! परम कला। जिस कला से आत्मा प्रगट हो और जिस कला से आत्मा को केवलज्ञान हो, ऐसी **परम कला सहित विकसित (प्रगट) निज गुणों से प्रफुल्लित...** आहाहा! अनन्त जो गुण हैं, उनका धारक जो भगवान, उसकी जिसने दृष्टि की है, उसे गुण खिले हुए हैं। शक्तिरूप से तो हैं ही, परन्तु जिसने अन्दर नजर और उसका आदर किया है, उसे वे अनन्त गुण पर्याय में खिले हैं। उस पर्याय में गुणों की दशा आयी है। आहाहा! अब ऐसा उपदेश।

जो परम कला सहित विकसित (प्रगट) निज गुणों से प्रफुल्लित (खिला हुआ) है,... आहाहा! अनन्त-अनन्त गुणों से खिला हुआ वह तत्त्व है। परन्तु किसे? जिसने नजर की है, उसे वह अनन्त गुणों से खिला हुआ तत्त्व है, ऐसा भान में आता है। आहाहा! जो अन्तर में नजर नहीं करता, बाह्य क्रियाकाण्ड में रच-पच गया है... आहाहा! उसे वह चीज़ गुण का विकास, खिली हुई दशा उसे नहीं होती। उसे राग और विकारी दशा होती है। आहाहा! एक कलश में कितना भरा है। आहाहा!

निज गुणों से प्रफुल्लित (खिला हुआ) है,... अनादि के ऐसे के ऐसे गुण हैं, ऐसा नहीं कहते हैं। यहाँ तो वहाँ नजर करके सम्यग्दृष्टि ने वहाँ अनन्त गुण, पर्याय में खिले हैं। आहाहा! जैसे कमल खिलता है; वैसे भगवान आत्मा अनन्त गुण का सागर, उसका जो आदर, सागर का जहाँ आदर (किया है) और राग तथा पर्याय में आदर जहाँ छूट जाता है, तब उसे धर्म होता है अर्थात् धर्म के गुण खिले हुए होते हैं। वे गुण खिले हुए होते हैं अर्थात् धर्म। किस प्रकार की बात! आहाहा! ऐसा धर्म कहाँ से निकाला? बापू! भगवान का अनादि का यह है। सम्प्रदाय में.. यह करो.. यह करो.. परन्तु यहाँ कहते हैं (कि) करना, वह ज्ञान के स्वरूप में है ही नहीं। वह तो जानने-देखनेवाला है। आहाहा! जानने-देखनेवाले को करना सौंपने में जानने-देखनेवाला तत्त्व नहीं रहता। उसे करूँ, यह करूँ, दया पालूँ - ऐसे उसे भाव हो... आहाहा! वहाँ चैतन्यमूर्ति की अनन्त खिली हुई दशा

चाहिए, वह खिली हुई.. होती नहीं। वहाँ तो राग की खिलावट है। आहाहा! ऐसा उपदेश है।.. सोनगढ़...

प्रभु! तू ऐसा है। तू ऐसा है। अरिहन्त को वीतरागता प्रगट होती है, केवलज्ञान प्रगट होता है, पूर्ण ज्ञान प्रगट होता है - वह कहाँ से आता है? कहीं बाहर से आता है? होवे, उसमें से आता है। प्राप्त की प्राप्ति है। अन्दर होवे तो आता है। कुए में होवे तो होज में पानी आता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्ण गुणसम्पन्न है, परन्तु उसमें दृष्टि देने से वे सब गुण खिले हुए दिखायी देते हैं। आहाहा! अर्थात् सभी गुणों की एक समय की पर्याय विकसित दिखायी देती है। बाहर आयी प्रगट दशा। आहाहा!

जिसकी सहज अवस्था स्फुटित (प्रकटित) है,... जिसकी स्वाभाविक अवस्था, वीतरागी सहज दशा वीतरागस्वरूप है। ऐसा जिसने दृष्टि में तत्त्व लिया, उसे वीतरागी भाव स्फुटित है, प्रगट है। आहाहा! गुण है, वह शक्तिरूप है। अनन्त गुण है। अनन्त-अनन्त गुण और अनादि का द्रव्य, ऐसा भगवान शक्तिरूप है, सामर्थ्यवाला है परन्तु उसके सन्मुख देखने पर, उसमें एकाग्र होने पर अनन्त गुणों की पर्याय खिल निकलती है, विकसित, स्फुटित प्रगट (होती है)। आहाहा! स्वाभाविक दशा प्रगट होती है। अज्ञानी को तो राग, दया, दान, काम, क्रोध के भाव प्रगट होते हैं, जो उसमें नहीं है। जो उसमें नहीं है, ऐसे प्रगट होते हैं, वह अधर्म है। आहाहा! दया और व्रत, भक्ति और पूजा, वह अधर्म है क्योंकि वे इसके गुण की खिली हुई अवस्था नहीं है। वह तो गुणों को रोकनेवाली रागदशा है। आहाहा! वह राग बन्धनकर्ता, अबद्धस्वरूप को अनादर करता है। अबन्धस्वरूप, मुक्तस्वरूप है, यह आ गया है। आहाहा! मुक्त आ गया है न? समयसार में।

जिसकी सहज अवस्था स्फुटित (-प्रकटित) है... अर्थात्? जो भगवान आत्मा अनन्त गुण के अस्तित्व अर्थात् मौजूदगी से भरपूर, उसका जहाँ स्वीकार किया, उसके सन्मुख देखा, उसके सन्मुख हुआ, उसे गुण की पर्याय प्रगट हुई है। वह गुण की पर्याय प्रगट हुई है, वह धर्म है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म। जिसकी सहज दशा... रागादि सहज दशा, वह तो विकृत विकार है। स्वाभाविक जो वस्तु है, उसकी स्वाभाविक सहज दशा प्रगट है। आहाहा! गजब श्लोक। एक श्लोक में बारह अंग का सार है, बारह अंग का सार! आहाहा! लो!....

और जो निरन्तर निज महिमा में लीन है। आहाहा! भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द है। वह आनन्द में लीन है। आहाहा! पर्याय से, हों! पर्याय से आनन्द में लीन है। आहाहा! जिसने वह अनाकुल आनन्द तत्त्व देखा, जाना, माना, अनुभव किया, उसे वह सहज तत्त्व अपनी महिमा में लीन है। उसकी निर्मल अवस्था गुण में लीन है। अज्ञान की अवस्था में राग में लीनता हुई है। चाहे दया, दान, व्रत और भक्ति के परिणाम में लीन है, वह अज्ञान है। निज महिमा में लीन है। आहाहा! मुनिराज को... यह टीकाकार तो मुनि है, इन्हें शब्द कम पड़ते हैं। उसे-अन्दर प्रभु को क्या कहना! वह अन्दर आनन्द का लड्डू है। अतीन्द्रिय ज्ञान का घर है। अतीन्द्रिय सुख-शान्ति... आहाहा! उसका स्थान है। अतीन्द्रिय सुख-शान्ति। सुख-शान्ति; कृत्रिम शान्ति नहीं। यह शुभराग आवे, उसमें शान्ति दिखायी दे... यह प्रश्न... है। वह शुभराग, वह कृत्रिम है। यह सहज है।

सहज **निरन्तर निज महिमा में लीन है।** ऐसा तत्त्व है। उस तत्त्व को यहाँ आत्मा कहते हैं और उस आत्मा पर नजर तथा अनुभव करने पर उसे आलोचना कहने में आता है, उसने आलोचना की। आहाहा! आलोचना अर्थात् वास्तविक देखना। उसने वास्तविक देखा। आहाहा! उसने आनन्द का सागर देखने पर पर्याय में स्फुटित शक्ति प्रगट होती है। ऐसा यह निज महिमा में लीन है। आहाहा! अर्थात् क्या कहते हैं? उसे कोई रागादि की महिमा नहीं आती। चाहे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधने का राग आवे। उस राग की महिमा चैतन्य को जाननेवाले को नहीं आती। चैतन्यतत्त्व को जाननेवाले धर्मी को निज महिमा के समक्ष रागादि की महिमा नहीं आती। रागादि की महिमा आवे, उसे निज की महिमा नहीं है। निज महिमा नहीं है अर्थात् मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह जैन नहीं। आहाहा! यह १७६ (श्लोक पूरा) हुआ।

श्लोक-१७७

(हरिणी)

सहज-परमं तत्त्वं तत्त्वेषु सप्तसु निर्मलं,
सकलविमलज्ञानावासं निरावरणं शिवम् ।
विशदविशदं नित्यं बाह्य-प्रपञ्च-पराङ्मुखं,
किमपि मनसां वाचां दूरं मुने-रपि तन्नुमः ।।१७७।।

(वीरछन्द)

सप्त तत्त्व में सहज सुनिर्मल परम तत्त्व अन् आवृत है।
सकल विमल ज्ञानालय शिवमय अति ही स्पष्ट सुशास्वत है॥
मुनिजन को भी दूर सदा है जो मन से अरु वाणी से।
बाह्य प्रपञ्च पराङ्मुख है जो उसे सदा हम नमन करें॥१७७॥

[श्लोकार्थः] सात तत्त्वों में सहज परम तत्त्व निर्मल है, सकल-विमल (सर्वथा विमल) ज्ञान का आवास है, निरावरण है, शिव (कल्याणमय) है, स्पष्ट-स्पष्ट है, नित्य है, बाह्य प्रपंच से पराङ्मुख है और मुनि को भी मन से तथा वाणी से अति दूर है; उसे हम नमन करते हैं॥१७७॥

श्लोक -१७७ पर प्रवचन

१७७ श्लोक।

सहज-परमं तत्त्वं तत्त्वेषु सप्तसु निर्मलं,
सकलविमलज्ञानावासं निरावरणं शिवम् ।
विशदविशदं नित्यं बाह्य-प्रपञ्च-पराङ्मुखं,
किमपि मनसां वाचां दूरं मुने-रपि तन्नुमः ।।१७७।।

मुनि को भी मन-वचन से दूर है। १७७।

[श्लोकार्थः] सात तत्त्वों में सहज परम तत्त्व निर्मल है,... आहाहा! संवर और

निर्जरा हुई, धर्म हुआ, उसे सात तत्त्वों में सहज तत्त्व निर्मल यह है। सात तत्त्व में संवर और निर्जरा की निर्मलता तो एक समय की है। आहाहा! त्रिकाली धर्मी जीव की दृष्टि होने पर अन्दर से जो धर्म प्रगट हो, वह धर्म तो पर्याय है। पर्याय की अवधि तो एक समय है। आहाहा! इसलिए यहाँ कहते हैं, **सात तत्त्वों में सहज परम तत्त्व निर्मल है,...** संवर और निर्जरा को भी यहाँ निर्मल नहीं कहा। यहाँ तो परम तत्त्व निर्मल है, ऐसा कहा। त्रिकाली। **सात तत्त्वों में सहज...** आहाहा! ऐसी बात क्रियाकाण्ड के रसवालों को नहीं जँचती। आहाहा!

मुमुक्षु : उसकी योग्यता ही नहीं है समझने की।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह रस चढ़ गया है न, रस। साधु ने भी रस चढ़ा दिया है न? यह करो... यह करो... यह करो... यह करो... व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो, दान करो, दया करो। करो... करो... और करो। मरो। करो, वहाँ मरो है। वस्तु ज्ञानस्वरूप है, उस ज्ञान में राग का करना, यह वस्तु में नहीं आता। आहाहा! वह तो जानने-देखनेवाला रहता है। उस जानने-देखनेवाले की दशा, वह धर्म है। आहाहा! जो रागादि आते हैं, वह तो अधर्म है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव अधर्म है। बन्धन का कारण है, उसे धर्म नहीं कहा जाता। आहाहा! कठिन बात है।

सात तत्त्वों में... भाषा स्पष्ट है। सात में संवर, निर्जरा, मोक्षतत्त्व में **सहज परम तत्त्व निर्मल है,...** त्रिकाली वस्तु, वह सहज निर्मल है। स्वाभाविक। यह तो निर्मल प्रगट हुई - संवर, निर्जरा और मोक्ष निर्मलता प्रगट हुई। सहज त्रिकाली... आहाहा! सात तत्त्वों में सहज परम तत्त्व त्रिकाली निर्मल है। आहाहा!

सकल-विमल (सर्वथा विमल) ज्ञान का आवास है,... आहाहा! यह भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान का रहने का स्थान है। रहने का आवास है। आहाहा! पूर्ण ज्ञान। **सकल-विमल (सर्वथा विमल) ज्ञान का आवास है,...** उसमें भरा है, कहते हैं। आहाहा! ऐसा कहकर क्या कहते हैं? सहज निर्मल ज्ञान, ज्ञान का आवास है। वह राग का आवास नहीं। दया, दान के राग का आवास वह सहज ज्ञान नहीं है। आहाहा! यहाँ तो पूरे दिन इसके लक्ष्य में यही होता है। यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... व्रत पालन किये, वहाँ धर्म हो गया। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वह स्वयं... आहाहा! **सकल-विमल (सर्वथा विमल) ज्ञान का आवास है,...** उसमें दया, दान, और काम-क्रोध के परिणाम का वह स्थान नहीं है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो राग है। राग का स्थान आत्मा नहीं है। आहाहा! तब है क्या? **सकल-विमल (सर्वथा विमल) ज्ञान का आवास है,...** पूर्ण ज्ञान के रहने का स्थान है। आहाहा!

यह बात सुनने को नहीं मिलती। बेचारी जिन्दगी चली जाती है। मरकर फिर ढोर में, पशु में जाए। बहुत मरकर तिर्यंच में जाए। आहाहा! धर्म नहीं होता; धर्म क्या है, उसकी खबर नहीं होती। राग की कोई क्रिया करता हो तो सहज साधारण पुण्य हो। उसमें वापस पूरा दिन व्यापार धन्धे का अकेला पाप हो तो उस पाप में और पुण्य भी समाप्त हो जाए। ऐरण की चोरी और सुई का दान। सोनी की लोहे की ऐरण होती है न? उसकी चोरी और सुई का दान; इसी प्रकार यह एक घण्टे जाए, वहाँ मिथ्यात्वसहित पुण्य बँधता है। पुण्य में धर्म मनावे, राग में धर्म मनावे, दया में मनावे। आहाहा! उसके राग के रुचिवाला उसमें रहा। वह क्षणिक समय शुभभाव में सुने तब हो परन्तु फिर तेईस घण्टे तो वापस पाप में। छह-सात घण्टे नींद में, छह-सात घण्टे स्त्री-पुत्र में जाए, व्यापार-धन्धे में दुकान में जाए। दुकान की पेढ़ी में बराबर बैठना चाहिए न! ग्राहक को सम्हालने के लिये। आहाहा! यह सब काल पाप में जाता है। उसमें एकाध घण्टे सुनने का पुण्य हो। कदाचित् सुनने गया हो। वह सब पाप के समक्ष वह पुण्य धुल जाता है। आहाहा! अर्थात् वह पाप इतना अधिक किया, उसके समक्ष वह पुण्य है, वह तो धुल जाता है। आहाहा! इसे जाना कहाँ? भटकने के रास्ते जानेवाला है यह। आहाहा! भारी कठिन बात।

सकल-विमल (सर्वथा विमल) ज्ञान का आवास है, निरावरण है,... प्रभु तो त्रिकाल निरावरण है। पर्याय में-अवस्था में राग का सम्बन्ध है, वस्तु में राग का सम्बन्ध नहीं। वस्तु जो निरावरण प्रभु है, वह सकल निरावरण है। ऐसा भगवान आत्मा अन्दर है। आहाहा! उस राग के आवरण काल में भी वस्तु है, वह तो त्रिकाल निरावरण है। पर्याय में राग, पुण्य-पाप, दया के परिणाम, वे आवरण हैं। भाव आवरण हैं और कर्म है, वह जड़ आवरण है। परन्तु उस आवरण के काल में भी भगवान आत्मा जो त्रिकाली है, वह निरावरण है। आहाहा!

शिव (कल्याणमय) है,... वह शिवस्वरूप है—कल्याणस्वरूप है, निरुपद्रवस्वरूप है। उसे राग का उपद्रव वस्तु में नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय का जो राग, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्र पढ़ने का विकल्प, वह सब उपद्रव द्रव्य में नहीं है। आहाहा! वह तो पर्याय में उपद्रव है। द्रव्य तो निरावरण है। सकल त्रिकाल निरावरण प्रभु। आहाहा! गले तक राग में प्रविष्ट हो गया हो, पूरे दिन राग... राग... राग... राग... राग... ठीक न पड़े वहाँ द्वेष (करे)। अब इसे कहे कि तू सकल निरावरण है। वह चीज़ तेरी वस्तु में प्रविष्ट नहीं है। आहाहा!

शिव... नमोत्थुणम में नहीं आता? नमोत्थुणम में आता है। 'सिवमलयमरुयमणंतम-मक्खयमव्वाखाहम...' 'नमोत्थुणं, अरिहंताणं, भगवंताणं, आईगराणं... सिवमलयम-रुयमणंतम...' यह आता है। शिव अर्थात् वे शंकर नहीं। यह शिव अर्थात् उपद्रवरहित अथवा शिव अर्थात् कल्याणमय। भगवान कल्याण की मूर्ति है। आहाहा! कल्याण कहीं राग से और पुण्य से नहीं आता। आहाहा! इस कल्याण की मूर्ति में से कल्याण आता है। आहाहा! कल्याण करना हो उसे कल्याण की मूर्ति की दृष्टि और अनुभव करना। आहाहा! इसके बिना कल्याण हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : हम तो आप कहते हो, वैसा करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा जैसा है, वैसा करे। आत्मा अन्दर ऐसा है, वैसा करे। आहाहा! ऐसी बात! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, लाखों रुपये खर्च करे। यह कहा न? नैरोबी गये थे न? अफ्रीका गये थे न? साढ़े पाँच लाख की मूर्ति स्थापित की। एक मूर्ति स्थापना के इतने। तथापि कहते हैं, बापू! धर्म नहीं, हों! तेरे साढ़े पाँच लाख क्या, करोड़ दे न! करोड़ का मन्दिर बना न! मन्दिर बनानेवाले हैं। दिगम्बर मन्दिर अफ्रीका में पहला-पहला दो हजार वर्ष में बनाते हैं। साठ घर हैं। पैसेवाले बहुत हैं। बड़ा मन्दिर बनाते हैं। पैंतालीस लाख का तो चन्दा किया है। हम वहाँ छब्बीस दिन रहे, उसमें पैंतालीस लाख का चन्दा किया है। उससे पहले पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाने का निर्णय किया था। तब हो सके? परन्तु कहा, यह लाख और करोड़... आहाहा! वह तो जड़ है, धूल है, धूल से धर्म होगा? यह धूल मेरी है, ऐसा माने वह मिथ्यादृष्टि है। पैसा मेरा और मेरा है, वह मैं देता हूँ। आहाहा! दुनिया से अलग बात है, भाई! सुनने में कठिन पड़े। बाहर की मान्यता में रुक गये। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **शिव...** आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर शिवस्वरूप है। अन्दर देह से भिन्न, राग से भिन्न, कल्याण की मूर्ति है। आहाहा! कल्याण का सागर, मूर्ति है, उसमें अकेला कल्याण ही भरा है। आत्मा में अकल्याण और राग-बाग है नहीं। आहाहा! किसे होगा यह?

मुमुक्षु : आत्मा को स्वयं को।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसने उसे जाना, उसे यह है। जाना नहीं, उसे प्रतीति नहीं आती। किसकी प्रतीति? जाने बिना प्रतीति किसकी? आहाहा! वह शिव को जो जानने में आवे, त्रिकाली भगवान कल्याण की मूर्ति प्रभु शिवस्वरूप है। शंकर, वे यह शिव नहीं। यहाँ तो कल्याण की मूर्ति का नाम शिव है। उसमें से अकल्याण में से प्रगटे, ऐसी वह चीज़ नहीं है। आहाहा! अकल्याण प्रगटे, वह तो पर की दृष्टि से प्रगटता है। स्व की दृष्टि और स्वभाव से अकल्याण नहीं प्रगट होता। आहाहा! यह किस प्रकार का धर्म? आज लन्दन का पत्र आया है। लन्दन में यह वाँचन चलता है। वह वीरचन्दभाई गये थे।.... के काका। बहुत पुस्तकें हो गयी न, लगभग तीस लाख पुस्तकें हैं। बाईस लाख यहाँ से और आठ लाख जयपुर से। चारों ओर देश-देशावर में पुस्तकें (गयी हैं)। आहाहा! परन्तु उन्हें समझानेवाला चाहिए तो उसे समझाये।

स्पष्ट-स्पष्ट है,... कैसा है भगवान... आहाहा! अकेला स्पष्ट नहीं कहा। **स्पष्ट-स्पष्ट है,...** पर्याय में से ज्ञात हुआ, इसलिए पर्याय स्पष्ट है और वस्तु भी स्पष्ट है। क्या कहा? आत्मा प्रत्यक्ष है। पर्याय में जहाँ ज्ञात हुआ, तब पर्याय भी प्रत्यक्ष है और पर्याय में ज्ञात हुई, वह चीज़ भी प्रत्यक्ष है। आहाहा! पर्याय में ज्ञात होता है, वह राग से ज्ञात नहीं होता, कि पहले दया, दान और भक्ति करें, उसमें से अपने शुभभाव से धीरे-धीरे अन्दर जाया जाएगा, वह ऐसा नहीं है। यह दु:खदशा है। शुभराग है, वह दु:खदशा है। भगवान तो कल्याण / शिवस्वरूप है। दु:खदशा से शिवस्वरूप में नहीं जाया जाएगा। आहाहा! ऐसी बात है।

स्पष्ट-स्पष्ट है,... आहाहा! **विशदविशदं** है न? **स्पष्ट-स्पष्ट है..** गुप्त नहीं। वह अकेली शक्तिवाला तत्त्व नहीं है। उस शक्तिवाले तत्त्व को अनुभव किया, इसलिए स्पष्ट-स्पष्ट है। पर्याय में भी स्पष्ट दिखायी दिया और वस्तु स्पष्ट-स्पष्ट है। आहाहा! वीतराग का मार्ग होगा यह? आहाहा! मार्ग तो यह है। वीतराग का मार्ग परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ...

त्रिलोकनाथ का प्रश्न हुआ कि त्रिलोकनाथ कैसे कहा ? – कि तीन लोक को जानते हैं इसलिए। कोई नाथ-बाथ किसी के नहीं हैं। तीन काल का ज्ञान है, वह ज्ञान अपना स्वरूप है। राजकोट, चन्दुभाई ने प्रश्न किया था। बहुत प्रश्न हुए थे।

स्पष्ट है। कौन ? अन्दर भगवान आत्मा नित्य है और स्पष्ट-स्पष्ट है। **नित्य है,...** संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय अनित्य है। राग और पुण्य, दया, दान की बात तो क्या करना, वह तो विकार है परन्तु अविकारी दशा होती है, वह भी पर्याय है, वह नित्य नहीं है। वह पर्याय अनित्य है और अनित्य द्वारा अनित्य से नित्य ज्ञात होता है। यह क्या कहा ? पर्याय जो रागरहित, वह अनित्य है, उससे नित्य ज्ञात होता है। नित्य से नित्य ज्ञात नहीं होता। राग है, उससे नित्य ज्ञात नहीं होता और नित्य से नित्य ज्ञात नहीं होता। अनित्य ऐसी निर्मल दशा से नित्य ज्ञात होता है। अरे ! यह तो बात-बात में अन्तर... आहाहा ! कहो... भाई ! ऐसा मार्ग है। कलकत्ता में और कहाँ भटके और मिले कुछ।

मुमुक्षु : दूसरा कुछ तो मिलता होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल मिलती है। धूल मिलती है, धूल-पैसा। वह इसे कहाँ मिलता है ? इसके पास आवे, तब मानता है कि यह मेरे हैं। वे इसके कहाँ से हुए ? पैसा तो पैसे में रहा। पैसा आत्मा में आता है ? पैसा आया और उसमें ममता करता है कि मुझे पैसा आया। यह ममता इसके पास आयी। इसके पास पैसा नहीं आता। आहाहा !

मुमुक्षु : तिजोरी में रखें तो अपने होते हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तिजोरी किसके बाप की ? वह तो जड़ है। तिजोरी जड़ है, मिट्टी-धूल है। धूल में धूल को रखे तो इसकी हो गयी ? दुनिया से अलग प्रकार है, बापू ! आहाहा ! तेरा तत्त्व अन्दर भगवान है, परमात्मा है। उस तत्त्व पर नजर कभी की ही नहीं और बाहर में दिखावा में... आहाहा ! दिखावा में सब निकाला। पुण्य और दया, दान, व्रत में जिन्दगी निकाली। चौपट कर डाला है।

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं कि वह **स्पष्ट-स्पष्ट है, नित्य है,...** आहाहा ! वस्तु नित्य है। संवर-निर्जरा और मोक्ष तो अनित्य है। आस्रव और पुण्य-पाप वह तो अनित्य है और विकार है परन्तु संवर-निर्जरा और मोक्ष जो निर्विकारी धर्म है, वह अनित्य है। उस पर्याय

में धर्म होता है। वस्तु स्वयं नित्य है। आहाहा! नित्य के अवलम्बन से अनित्य में धर्म होता है। अनित्य, नित्य को जानता है। आहाहा! सम्यग्ज्ञान का जो अनित्यपना, वह अनित्य सम्यग्ज्ञान नित्य को जानता है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : पर्याय की कीमत बढ़ गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बढ़ी तो... उस पर्याय से ज्ञात हो, ऐसा है। दूसरे से ज्ञात नहीं होता, ऐसा है। निर्मल पर्याय से ज्ञात होता है। ऐसा बढ़ा है। ज्ञात होता है पर्याय में परन्तु पर्याय में ज्ञात होता है कौन? कि ध्रुव जो है वह। आहाहा! वास्तव में तो ध्रुव को पर्याय जानती है। ध्रुव में एकमेक नहीं होती। ज्ञान की पर्याय में ध्रुव ज्ञात होता है, कहीं ध्रुव में पर्याय घुस नहीं गयी है तथा पर्याय में ध्रुव आया नहीं है। ध्रुव का सामर्थ्य है, ऐसा पर्याय में ज्ञान आया। ज्ञान की पर्याय में उसके सामर्थ्य का ज्ञान आया परन्तु वह चीज़ पर्याय में आ जाए, ऐसा नहीं है। आहाहा! अब ऐसी बातें करे, फिर सब एकान्त कहे न! व्यवहार की बातें करते नहीं। व्यवहार से होता है, ऐसा कहते नहीं। उसकी बात सत्य। व्यवहार से... पूरे अपवास निराहार करते हैं, पानी की बूँद भी नहीं लेते। धूल में भी नहीं है।....वह तो लंघन है। आत्मा राग से भिन्न है, ऐसी दृष्टि जहाँ नहीं, वहाँ यह सब... क्या कहा? लंघन है लंघन। लंघन करके मर गया। महीने के अपवास और छह-छह महीने के अपवास।

यहाँ कहते हैं, **नित्य है, बाह्य प्रपंच से पराङ्मुख है...** आहाहा! बाहर के विकल्प के प्रपंच से तो पराङ्मुख है। ओहोहो! गजब किया न! **और मुनि को भी मन से तथा वाणी से अति दूर है;...** आहाहा! सच्चे मुनि हों, उन्हें भी उनके मन से और वाणी से दूर वस्तु है। आहाहा! वाणी और मन से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! मुनिपना गजब बात है, बापू! कहाँ मुनिपना है? अभी मुनिपना कहाँ है? अभी समकित का ठिकाना नहीं होता। उसकी दृष्टि है विषय में, निमित्त में। (मुनिपना) आवे कहाँ? यहाँ कहते हैं। **मुनि को भी मन से तथा वाणी से अति दूर है;...**

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)